'नवार्ण'-मन्त्र का अर्थ

❀ 'कुल-मार्तण्ड' पं० योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री

'देव्यथर्व-शीर्षोपनिषद्' में यह वर्णन आया है कि एक बार सब देवता लोग श्री देवी भगवती के समीप गए और उनसे प्रश्न किया कि 'हे भगवति ! आप कौन हैं ?' देवताओं के प्रश्न का उत्तर देती हुई माता ने कहा कि 'मैं ब्रह्म-स्वरूपिणी हूँ। सगुण और निर्गुण--दोनों मेरे ही रूप हैं।' श्री देवी भगवती का उत्तर सुनकर देवताओं ने निम्न-लिखित प्रकार से प्रणाम किया---

'···नमो देव्यै महा-देव्यै, शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै, नियताः प्रणतः स्म ताम् ॥'

'नवार्ण'-मन्त्र का उद्धार

"कामो योनिः कमला वज्र - पाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकला मायया च, पुरूच्येषा विश्व - मातादि विद्योम् ॥

एषात्म-शक्ति, एषा विश्व-मोहिनी पाशांकुश-धनुर्बाण-धरा, एषा श्रीमहा-विद्या ।

उक्त प्रकार श्रीमहा-विद्या पञ्चदशी मन्त्र का उद्धार किया है। यथा - कामः = क-कार, योनिः = ए-कार, कमला = ई-कार, वज्र-पाणि = ल-कार, गुहा = ह्रीं-कार ।

इस प्रकार इसका उद्धार उपासकों को विदित ही है। श्रीविद्या के तीन कूटों के ही रूपान्तर वाग्-बीज (ऐं), काम-बीज (क्लीं) और शक्ति-बीज (सौः) हैं। वे ही श्रीबाला-त्रिपुर-सुन्दरी मन्त्र के घटक हैं। पुनः शक्ति-बीज का निम्न प्रकार उद्धार 'देव्युपनिषद्' में किया गया है—

वियदीकार-संयुक्तं, वीति-होत्र-समन्वितम् । अर्धेन्दु-लसितं देव्या, बीजं सर्वार्थ-साधकम् ॥

अर्थात् वियत्···ह-कार, ईकार···ई, वीति - होत्र·· र-कार, अर्धेन्दु··· अनुस्वार--इन सबको मिलाकर 'ह्रीं' हृल्लेखा का स्वरूप बनता है। यह भी 'शक्ति-बीज' है और इसका नाम 'हृल्लेखा' भी है, जिसके विषय में मन्त्रोद्धार के अगले मन्त्र में लिखा है कि इसका 'जप' शुद्ध-चित्त यति लोग किया करते हैं। गृहस्थ लोगों को केवल ॐ-कार के उच्चारण का अधिकार नहीं है। अतः गृहस्थ शाक्त ॐ-कार के स्थान पर ह्रीं-कार का उच्चारण किया करते हैं। 'तन्त्र-शास्त्र' में 'ह्रीं' बीज का वही स्थान है, जो वेद में ॐ-कार का है। दोनों एक ही हैं। देखिए, 'देव्युपनिषद्'--

एवमेकाक्षरं मन्त्रं, यतयः शुद्ध-चेतसः। ध्यायन्ति परमानन्द - मया ज्ञानाम्बु-राशयः ॥

तदनन्तर महा-सरस्वती, महा-लक्ष्मी और महा-काली--इन तीन शक्तियों के बीजों से घटित 'नवार्ण मन्त्र' का उद्धार निम्न प्रकार से 'देव्यथर्व-शीर्ष' में किया गया है। यथा--

वाङ्-माया ब्रह्म-भूस्तस्मात्, षष्ठं वक्त्र-समन्वितम् । सूर्यो वाम श्रोत्र-विन्दु-संयुक्ताष्टात् तृतीयकः ।
नारायणेन संयुक्तो, वायुश्चाधर - युक्ततः । विच्चे नवार्णकोऽणुः स्यान्महदानन्द - दायकः ॥

अर्थात् वाक्···वाग्भव बीज (ऐं), माया···शक्ति हृल्लेखा (ह्रीं), ब्रह्म-भूः···काम - बीज (क्लीं), तस्मात्···काम-बीज में स्थित क-कार से षष्ठ···छठा अर्थात् च-कार, वक्त्रं···मुख-वृत्त···आ-कार अर्थात् 'चा', सूर्यः··· म-कार, अवाम - श्रोत्रं···दाहिना कान···उ-कार, विन्दु - संयुक्तं···विन्दु से युक्त अर्थात् 'मुं',

टात्···ट-कार से, तृतीयकः···तीसरा अर्थात् 'ट' से तीसरा अक्षर ···'ड', नारायणेन···आ-कार से, सम्मिश्रः···मिला हुआ अर्थात् 'डा', वायुः···य-कार, अधर-युक्···ऐ-कार से युक्त अर्थात् 'यै', विच्चे··· अन्त में 'विच्चे' पद जोड़कर, नवार्णकः···चण्डी का नवार्ण, अणुः·· मन्त्र, स्यात्··हो जाता है, जो बड़े भारी आनन्द का देनेवाला है।

'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' अक्षरों को जोड़कर 'नवार्ण मन्त्र' बनता है। 'महदानन्द-दायकः' का अर्थ है, उपासकों को बड़े आनन्द का देनेवाला तथा इसका दूसरा अर्थ उपासकों के लिए 'ब्रह्मानन्द' का देनेवाला है। अथवा यह नवार्ण मन्त्र' ब्रह्म-सायुज्य का देनेवाला है।

'नवार्ण'-मन्त्र का अर्थ

'नवार्ण मन्त्र' की महिमा 'डामर' आदि अनेक तन्त्रों में गाई गई है। वहीं पर इस मन्त्र का अर्थ भी लिखा गया है। यथा—

निर्धूत-निखिलाध्वान्ते, नित्य-मुक्ते परात्परे ! अखण्ड-ब्रह्म-विद्यायै, चित्-सदानन्द-रूपिणि !॥
अनुसंदध्महे नित्यं, वयं त्वां हृदयाम्बुजे। इत्थं विशदयत्येषा, या कल्याणी नवाक्षरी॥
अस्या महिम-लेशोऽपि, गदितुं केन शक्यते ? बहुनां जन्मनामन्ते, प्राप्यते भाग्य - गौरवात्॥
एनमर्थं गुरोर्लब्ध्वा, तस्मै दत्वा च दक्षिणाम्। आशिषं च परं लब्ध्वा, मन्त्र-सिद्धिमवाप्नुयात्॥

यहाँ पर 'नवार्ण मन्त्र' के 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै वित् च ई'—इस प्रकार सात खण्ड किए गए हैं। पहले तीन बीज सम्बोधन हैं। फिर 'चामुण्डायै' यह चतुर्थ्यन्त पद है। इसके बाद 'वित् च इ' ये तीन भी सम्बोधन हैं। उक्त रीति से इस मन्त्र के सात पदच्छेद किए गए हैं।

चिद्-रूपा सरस्वती का बोधक वाग्-बीज (ऐं)

पर-ब्रह्म का धर्म सच्चिदानन्दात्मक है। अतएव उसकी शक्ति के तीन रूप हैं। मन्त्र में चिद्-रूपा सरस्वती का वाग्-बीज (ऐं) से सम्बोधन किया गया है। ज्ञान से ही अज्ञान का नाश होता है। अतएव उपर्युक्त मन्त्र-व्याख्या में 'निर्धूत-निखिल-ध्वान्त' पद से विवरण ठीक ही है।

'नित्यत्व' और 'मुक्तत्व' का बोधक माया-बीज (ह्रीं)

'नित्यत्व' का अर्थ त्रिकालाबाध्यत्व है अर्थात् जो तीनों कालों में विद्यमान रहे। 'मुक्तत्व' का अर्थ कल्पित वियदादि प्रपञ्च से राहित्य का है। अतएव सद्-रूपात्मक महा - लक्ष्मी - स्वरूप का हृल्लेखा (ह्रीं-कार) से सम्बोधन किया गया है।

आनन्द-रूपा महा-काली का बोधक काम-बीज (क्लीं)

'परात्पर' इस पद से ब्रह्मानन्द का अर्थ लिया गया है। अतः 'स्वात्मानन्द-लवीभूत-ब्रह्माद्यानन्त-सन्ततिः' यह नाम ब्रह्माण्ड-पुराणान्तर्गत 'श्रीललिता-सहस्र-नाम' में श्रीललिता महा - त्रिपुर - सुन्दरी का लिखा गया है। अतएव 'परात्परे' से आनन्द-प्रधान महा-काली-स्वरूप का काम-बीज (क्लीं) से सम्बोधन किया गया है।

निर्विकल्प वृत्ति का बोधक—'चामुण्डा'

'चामुण्डायै'—यहाँ पर 'चामुण्डा' शब्द मोक्ष की कारण-भूता निर्विकल्प वृत्ति का बोधक है। तादर्थ्य में चतुर्थी हो गई है।

'चमूं वियदादि-समूह-रूपां सेनां डाति लाति लडयोरैक्यात् आदत्ते स्वात्म-सात्-कारेण नाशयति इति व्युत्पत्तेः पृषोदरादित्वात् सर्वं सुस्थम् ।'

अर्थात् वियदादि प्रपञ्च-पञ्चक की सेना का नाश करनेवाली है।

मया तवात्रोपहृतौ, चण्ड-मुण्डौ महा-पशू । यस्माच्चण्डं च मुण्डं च, गृहीत्वा त्वमुपागता ।।
चामुण्डेति ततो लोके, ख्याता देवि ! भविष्यति ।

यहाँ पर 'चण्ड-मुण्ड' शब्दों से महा-पशु 'चण्ड' और 'मुण्ड' को लेकर –इन दोनों स्थानों पर तूल-मूल नामक अज्ञानों (अविद्या) का नाश करने से ही 'चामुण्डा' शब्द का अर्थ 'ब्रह्म-विद्या' है। 'इ'-पद 'ई' का सम्बोधन है। इसका अर्थ है हे आनन्द-ब्रह्म-महिषि ! 'वित्' का अर्थ है ज्ञान हे ज्ञान - स्वरूपे ! 'च' नपुंसक शब्द है और इसका अर्थ है सत्य। इस प्रकार "हे महा-सरस्वती-महा-लक्ष्मी-महा-काली-स्वरूपा चण्डिके ! हम लोग ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए सदा तुम्हारा ध्यान करते हैं।" यह 'नवार्ण मन्त्र' का फलितार्थ है। यह अर्थ निम्न-लिखित श्लोक में लिखा गया है—

महा-सरस्वति-चिते, महा-लक्ष्मि-सदात्मिके ! महा-काल्यानन्द-रूपे ! तत्त्व-ज्ञानार्थ-सिद्धये ।
अनुसन्दध्महे चण्डि ! वयं त्वां हृदयाम्बुजे ।।

'श्रीं' और 'ह्रीं' एवं 'क्लीं' और 'क्रीं' बीजों की एक-रूपता

यद्यपि महा-लक्ष्मी का प्रसिद्ध बीज 'श्रीं' है, न कि 'ह्रीं', तथापि 'शषसहा ऊष्माणः' के अनुसार 'ह'-कार और 'ष'-कार एक जाति के होने से बहुत बड़ा भेद नहीं है। अतएव 'श्रीश्च ते, लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'—दूसरी शाखा में 'ह्रीं च ते, लक्ष्मीश्च पत्न्यौ' इस मन्त्र में 'श्रीः' के स्थान पर 'ह्रीं' देखा जाता है। इसी प्रकार काम-बीज 'क्लीं' में ल-कार के स्थान पर रेफ (र) के योजन से अर्थात् 'क्रीं' कर देने से 'काली-बीज' हो जाता है। 'यरलेऽन्तस्थाः' अर्थात् 'य-व-र-ल' इनका अन्तःस्थ स्थान है। अतः 'र' और 'ल' दोनों अन्तःस्थ होने से कोई बड़ा भेद नहीं है। वास्तविक बात यह है कि तन्त्रान्तरों में 'काली' और 'सरस्वती' का अभेद माना गया है। अतएव इनके बीजों में वैपरीत्य-व्यवहार भी देखा जाता है।

'चामुण्डा'-शब्द के कुछ अन्य अर्थ

अथवा 'चमु अदने' इस धातु से 'चामुः' शब्द बनाया गया, जिसका अर्थ अदनीय पदार्थ होता है। वह पदार्थ ब्रह्म के अतिरिक्त सब कुछ माना गया है। 'अत्ता चराचर - ग्रहणात्'—इस अधिकरण में जो 'अत्ता' का अर्थ है, वहीं 'चामुः' का अर्थ यहाँ पर लिया गया है। उसको (चामु पदार्थ को) जो अपने विषय में नहीं लाती अर्थात् ब्रह्म-मात्र-विषयिणी। 'चामुं डापयति उज्जनयति न विषयीकुरुते ब्रह्म - मात्र-विषयिणीति यावत् ।'

अथवा एकाक्षर-निघण्टु में च-कार (च) चन्द्रमा का वाचक है। चन्द्रमा आह्लादक और प्रकाश-गुण का वाचक है। अतः यहाँ पर ज्ञान अथवा आनन्द अर्थ 'च' का लिया गया है और वह आनन्द-स्वरूप तथा ज्ञान-स्वरूप ब्रह्म ही है। 'तदाऽऽसमन्तात् मुण्डयति इति चामुण्डा'—उस ब्रह्म का, जो चारों ओर से मुण्डन करती है। 'मुण्डन' का अर्थ यहाँ पर आधार की अपेक्षा से न्यून सत्तावाली वस्तु का निरास है। ऐसा 'गुप्तवती' टीका में बताया है।

'चामुण्डा' का दूसरा अर्थ इस प्रकार है--'च' का अर्थ बुद्धि और सुख है। जो बुद्धि और सुख की 'मुण्ड'-स्थानीया (शीर्ष-स्थानीया) है अर्थात् जिस प्रकार शरीर में शिर का स्थान सबसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार चरम वृत्ति-स्वरूपा ब्रह्म-विद्या सर्व-श्रेष्ठ है।

अथवा 'चामुण्डा' शब्द का अर्थ भगवती 'चण्डिका' ही है। अतएव होम के समय पर 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे स्वाहा'--इस प्रकार नवार्ण मन्त्र पर 'स्वाहा' का योजन किया जाता है और मन्त्र में 'चामुण्डायै'-- इस चतुर्थी विभक्ति के बल से 'नमः' पद के प्रयोग का अध्याहार होता है। मन्त्र में 'ऐं ह्रीं क्लीं'--ये जो तीन बीज हैं, ये भी अव्यय-रूप चतुर्थ्यन्त के ही पूर्वोक्त तीनों शक्तियों (देवताओं) के वाचक हैं और मन्त्र के अन्तिम भाग में 'विच्चे' यह पद भी 'स्वरादे सकृति - गणत्वात्'-- इस नियम से अखण्ड अव्यय है क्योंकि मन्त्र के न्यास-प्रकरण में 'विच्चे कनिष्ठाभ्यां नमः'--यह एक ही पद काम में लाया जाता है।

'नवार्ण'-मन्त्र का विशिष्ट अर्थ

अतः 'नवार्ण मन्त्र' का विशिष्टार्थ यह है--'हे माता! बन्धन की कारणी-भूत त्रिगुणात्मिका रज्जु-ग्रन्थि-विसर्जनादि से मुझे छुड़ाकर मोक्ष प्रदान कर।' 'मन्त्रार्थ-संग्रह' में लिखा है--

काल्यै लक्ष्म्यै सरस्वत्यै, चण्डिकायै नमोऽस्तु ते।

अविद्या - पाश - हृदय - ग्रन्थिं, विस्रस्य मुञ्च माम्॥

अर्थात् हे महा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-स्वरूपिणी चण्डिके भगवति! आपको नमस्कार। मेरे हृदय में विद्यमान अविद्या (अज्ञान) पाश की ग्रन्थि को छुड़ाकर (खोलकर) मुझे इस संसार के आवा-गमन से मुक्त कर दो अर्थात् मैं जन्म लेने से छुट्टी पाकर ब्रह्म में लीन हो जाऊँ।

'देव्यथर्व-शीर्ष' में नवार्ण-मन्त्रोद्धार के अनन्तर भगवती का ध्यान दिया गया है। यथा--

हृत् - पुण्डरीक - मध्यस्थां, प्रातः-सूर्य-सम-प्रभाम्।
पाशांकुश - धरां सौम्यां, वरदाभय - हस्तकाम्॥
नमामि त्वामहं देवीं, महा - भय - विनाशिनीम्।
महा-दुर्ग-प्रशमनीं, महा - कारुण्य - विग्रहाम्॥...
यस्याः पर - तरं नास्ति, सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता।
तां दुर्गां दुर्गमां देवीं, दुराचार - विघातिनीम्॥
नमामि भव - भीतोऽहं, संसारार्णव - तारिणीम्।

इस प्रकार 'अथर्व - शीर्ष' भी समाप्त होता है और 'नवार्ण' मन्त्र की व्याख्या भी समाप्त होती है।

'नवार्ण' में ॐ के संयोग का विमर्श

✿ पण्डित-प्रवर श्री हरि शास्त्री दाधीच

[प्रसिद्ध 'नवार्ण - मन्त्र' (ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे) में अधिकतर लोग 'ॐ' - कार को लगाकर ही 'जप' करते हैं क्योंकि अधिकांश छपी हुई 'श्रीदुर्गा सप्तशती' की पुस्तकों में 'ॐ' सहित ही 'नवार्ण' - मन्त्र को छापा जा रहा है। 'नवार्ण' में 'ॐ' को जोड़ना उचित है या नहीं, इस सम्बन्ध में यहाँ साधक-प्रवर 'आम्नाय-धुरन्धर आशु-कवि' स्वर्गीय पं० हरि शास्त्री दाधीच की विवेचना प्रस्तुत है। 'चण्डी' के १५ वें वर्ष में यह विवेचना पहले-पहल प्रकाशित हुई थी। पाठकों की माँग पर हम इसे पुनः प्रकाशित कर रहे हैं। यह विवेचना आज भी भ्रम को दूर करनेवाली एवं ज्ञान-वर्धक है, इसमें सन्देह नहीं।—सं०]

'मन्त्र' के 'उद्धार-वाक्य' में जो क्रम लिखा रहता है, वही साधकों को मन्त्र-स्वरूप के लिए उपादेय होता है और जिस मन्त्र के 'उद्धार'-वाक्य में जो नहीं है, उसे जोड़ना हानि-कारक होता है। जैसे—

किसी वैद्य या डाक्टर ने एक रोग-विशेष पर कोई नुस्खा लिखा। उस नुस्खे को वैसा-का-वैसा ही तैयार कर रोगी को देने से वह लाभ करता है। यदि उसके लिखे नुस्खे में हम अपनी तरफ से २-४ दवा (वस्तु) और मिला दें या उसकी लिखी दवाओं में से १-२ घटा दें, तो वह नुस्खा उस रोगी का रोग दूर करने की वजाय अन्य रोग पैदा कर देगा और लाभ - दायक कभी न होगा। यही बात 'मन्त्र - शास्त्र' के मन्त्र-प्रयोगों के लिए समझना चाहिए। मन्त्र के उद्धार-कर्ता शास्त्र-कारों ने मन्त्र का जो स्वरूप बतलाया है, वैसा ही साधक को उपयोग में लाना चाहिए। उसमें न्यूनाधिक कर लेना ठीक नहीं है।

'आयुर्वेद - शास्त्र' शुण्ठी को महौषध और रत्न (औषध - रत्न) कहता है। जैसे 'शुण्ठी महौषध-रत्नम्' और हरीतकी (हर्र) को माता के समान सदोपकारिणी कहता है। 'यस्य माता गृहे नास्ति, तस्य माता हरीतकी' इत्यादि। तो यहाँ समझने की बात यह है कि जिस नुस्खे का स्वरूप सुश्रुत, वाग्भट, चरक, यागवल्क्य, हारीत, आत्रेयादि महर्षियों ने निर्णीत किया है, उनमें सदा उपकारक सर्व - साधारणोपयोगी मानकर शुण्ठी (सोंठ) या हरीतकी 'हर्र' और मिला दिया करे, तो वह प्रयोग (नुस्खा) विकृत हो जायगा और जिस रोग को लक्ष्य कर ऋषियों ने बनाया है, वह लक्ष्य सिद्ध न होगा।

इस दृष्टान्त से आपको यह समझाया है कि प्रणव (ॐ) सर्व-साधारण मन्त्रों का मूर्धन्य बनाकर रखा जाए, तो वह सब मन्त्रों को उपयुक्त बनाता है, सबको लाभ करता है, इसलिए विशेष मन्त्र, जिन्हें ऋषियों ने स्वरूप-निर्णय कर लिखा है और जिनके स्वरूप में ॐकार की आज्ञा नहीं है, उनमें बिना ॐ-कार के ही वे मन्त्र सिद्धि-दाता और फल-प्रद होते हैं, प्रणव (ॐ) लगाने से नहीं होते। ऐसा न समझकर ॐ भी जोड़ा जाए, तो वे मन्त्र और-के-और ही स्वरूपवाले बनकर और-का-और ही फल या कुफल देते हैं और देंगे।

उक्त विषय पर यदि कुछ लोग कहेंगे कि 'वाह ! प्रणव तो वेदों का मूल है, प्रणव बिना मन्त्र ही क्या !' तो मैं कहूँगा कि यह समझ में शिथिलता है। सबका आदि है, इसका मतलब सभी मन्त्रों का आदि है, यह 'वेद' में नहीं है। वेदों में जो है, उसे समझना चाहिए। कालिदास महा-कवि ने 'रघु-वंश' के प्रथम सर्ग में वैवस्वत मनु को राजाओं के आदि में बतलाते हुए यही उपमा दी है–"प्रणवश्छन्दसामिव"।

वहाँ 'मन्त्र' शब्द नहीं है, 'छन्द' शब्द है। जैसे 'वेद' के शब्दों में 'मन्त्र' बनाने के लिए प्रणव (ॐ) जोड़ते हैं अर्थात् वैदिक छन्दों के आदि में ॐकार है, वैसे ही राजाओं का आदि वैवस्वत मनु हुआ है।

अब यहाँ यह समझने की बात है कि 'वेद' में ऐसा क्यों कहा है ? 'छन्द'—१ गायत्री, २ उष्णिक्, ३ अनुष्टव्, ४ वृहती, ५ पंक्ति, ६ त्रिष्टुप् और ७ जगती—ये सात प्रधान हैं। फिर इनके अनेक भेद वैदिक-पिङ्गल (छन्द-शास्त्र) में बतलाए हैं। उन सबको 'मन्त्र' बनाने के लिए ॐकार का आदेश है, न कि बने हुए 'मन्त्र' पर लगाने का।

इसके अतिरिक्त वेदों में ऋक्, छन्द, यजु, सामादि शब्द विशेष परिभाषा से बद्ध हैं, तो भी ये शब्द छन्दः-सामान्य में गिने जाते हैं। छन्द को 'मन्त्रत्व' ॐकार से भी प्राप्त होता है, इसी कारण यह निर्देश हुआ है। सामान्य छन्द के भी ॐकार लगाओ, तो वह 'मन्त्र' बन जाता है। 'मन्त्र' शब्द का अर्थ है—गुप्त भाषण करना। 'छन्द' का यह अर्थ नहीं है। तो सामान्य छादन-रूप के अर्थवाले 'छन्द' के पूर्व 'ॐ' लगाया, तो वह गुप्त भाषण जप-रूप कर्म का हेतु 'मन्त्र' बन गया। अब उसमें मन्त्र-शक्ति, जो गुप्त ईषण से मन की रश्मि और भावना को दूर भेजकर इष्ट-सिद्धि को आकृष्ट कर ले, प्राप्त हो गई। ऐसा महर्षियों का सिद्धान्त 'प्रणव' लगाने का वेदों में बतलाया है।

उक्त शास्त्र-तत्त्व को समझने के लिए पहले प्रणव (ॐ) पर विचार करना आवश्यक है। प्रणव क्या है ? वह एक ॐकार ही है कि और भी हैं ? वह कैसा है ? उसमें क्या-क्या विशेषता है ? इत्यादि बातें शास्त्रों और आगम - निगमों से प्रमाण - पूर्वक प्रस्तुत करते हैं, जिनके समझने से आप स्वयं ही यह निर्णय कर लेंगे कि ॐकार को 'नवार्ण मन्त्र' (चण्डी-मन्त्र) के पूर्व लगाना युक्त है कि नहीं।

'प्रणव'-शब्द में वैदिक-काल प्रवृत्त हुआ है। यह किसी 'संज्ञा' का 'विशेषण' - स्वरूप है क्योंकि इसकी निरुक्ति ऐसी ही हुई है, जिससे यह पर-पदार्थ-प्रधान है। जैसे—प्र+णू 'स्तुतौ' अदादि, परस्मैपद अनिट् क्रिया से 'ऋदोरप' (३।३।५७)—यह व्याकरण - सूत्र लगाकर 'अप्' प्रत्यय हुआ। 'प्र+णू+अप्' ऐसा बना। 'प्' को हत किया और 'प्र+नू+अ' रहा। धातुओं में 'ण' को 'न' सर्वत्र ही हो। इस नियम से 'णू' को 'नू' लिखा है, परन्तु 'उपसर्गात्' (८।४।१४) से पुनः 'णत्व'-विधान होकर 'प्र+णू+अ' रहा। फिर गुण-सन्धि से 'प्र+णो+अ' रहा। ॐकार को 'एचोऽयवायावः' इस सूत्र से अब आदेश किया, तब 'प्रणव'-शब्द बना।

'प्रणव' की निरुक्ति शास्त्रकारों ने ऐसी ही बतलाई है। 'प्रकर्षेण नूयते स्तूयते इति प्रणवः' अर्थात् जो बढ़कर उत्कर्ष से स्तवन किया जाता है, वह 'प्रणव' है। 'स्तवन' या 'स्तुति' अर्थात् प्रशंसा। वह सर्वोत्कर्षवाली है। सर्वोत्कृष्ट की स्तुति करता हो या सर्वोत्कर्ष से स्तुति की जाती हो—ऐसा अर्थ है। किसी भी तरह से देखिए, इसका कोई विशेष्य है—वह वर्ण हो, देवता हो, मनुष्य हो आदि कोई हो। इस प्रकार 'ॐ - कार' सर्वोत्कर्ष स्तुति - करण अर्थवाला शब्द है। 'ॐ - कार' के समान सर्वोत्कर्ष स्तुतिवाला 'प्रणव'-ॐ-शब्द 'ह्रीं'-कार भी निगमागमों में बतलाया गया है।

'देवी-भागवत', द्वादश-स्कन्ध के आठवें अध्याय की कथा के अन्त में इन्द्र को स्वयं भगवती ने उपदेश किया है। वहाँ भगवती भुवनेश्वरी इन्द्र से कहती हैं कि 'ॐ'—यह जो एकाक्षर ब्रह्म - रूप है, इसी को वेद 'ह्रीं'-मय अर्थात् ह्रीं-कार कहते हैं। 'ॐ' और 'ह्रीं'— ये दोनों बीज मेरे मुख्य मन्त्र हैं। हे इन्द्र-देव ! तुम यह समझो क्योंकि मैं 'माया-भाग' और 'ब्रह्म-भाग'—इन दो भागों से जगत् की सृष्टि करती हूँ। 'माया-भाग' और 'ब्रह्म-भाग' मुझमें ही हैं, मेरे ही हैं, मुझसे भिन्न नहीं हैं। मेरे दो भाग हैं। इसी कारण मेरे बीज-मन्त्र भी दो हैं—एक 'ॐ'-कार और एक 'ह्रीं'-कार। पहला भाग सच्चिदानन्द - रूप है और दूसरा भाग माया-प्रकृति-संज्ञक है। वह माया परा-शक्ति है और मैं शक्ति - मती ईश्वरी—परमेश्वरी हूँ। मेरे ये दोनों बीज-मन्त्र 'प्रणव' कहलाते हैं क्योंकि इनसे मेरे प्रकर्ष की स्तुति होती है। ये बीज मेरे उत्कर्ष के द्योतक हैं। इसलिए इन्हें 'प्रणव' कहते हैं।

'साम-वेद' में इन बीजों का नाम 'उद्‌गीथ' आया है। देखिए 'छान्दोग्य उपनिषद्'—'ओमित्ये-दक्षरमुद्‌गीथमुपासीत।' फिर आगे चलकर 'य उद्‌गीथः, स प्रणवः। यः प्रणवः, स उद्‌गीथः।' (छान्दोग्य उपनिषद्, प्रथमाध्याय)। ऐसे ही 'ॐ ब्रह्मेति, ह्रीं ब्रह्मेति।' दोनों ही भाग शक्ति-विशिष्ट ब्रह्म के वाचक हैं। ऐसा टीका में भी स्पष्ट है।

'ॐ'-कार को 'ब्रह्म-प्रणव' कहा गया है और 'ह्'-कार को 'माया-प्रणव' अथवा 'प्रकृति-प्रणव' कहा है। अब इन दोनों का स्वरूप - विश्लेषण कर देखिए। 'माण्डूक्योपनिषद्' में 'ॐ' - कार की महान् महिमा बतलाते हुए इसकी बहुत प्रशस्ति है और इसके विषय में सभी उपनिषदों का मन्तव्य बताया गया है। वहाँ इसके तीन पाद बताए हैं—'अ—उ—म्' = ॐ। तीन वर्णों को ही तीन पाद माना जाता है और इन्हीं तीन वर्णों को मात्रा मानते हैं। यही नह, इन तीन वर्णों में तीन-तीन की संख्यावाले प्रसिद्ध तत्त्वों को या भावों को इनमें निहित भी किया जाता है। जैसे तीन वेद, तीन गुण, तीन अग्नि, तीन लोक, तीन देव, तीन वृत्तियाँ इत्यादि।

आगे विभिन्न मतान्तरों के अन्तर्गत ॐ-कार की मात्राएं भिन्न-भिन्न मानी हैं। कोई आचार्य ३ मात्रा का मानते हैं, तो कोई ५ मात्रा, तो कोई ७ तथा कोई-कोई तो बढ़ते-बढ़ते ६४ मात्रा तक मान गए हैं ! यदि सभी का हिसाब ब्योरेवार यहाँ लिखा जाय, तो यह लेख एक स्वतन्त्र पुस्तिका का रूप धारण कर लेगा। अतः संक्षेप में चर्चा कर प्रस्तुत विषय पर निर्णय लेते हैं।

ॐ-कार के तीन वर्ण ही तीन पाद हैं और वे ही तीन मात्राएँ हैं। प्रथम 'अ'-कार जाग्रत् और द्वितीय 'उ'-कार स्वप्न एवं तृतीय 'म'-कार सुषुप्ति का रूप है। सुषुप्ति को 'अर्ध-मात्रा' मानते हैं। अतः ॐ-कार का २।। मात्रा का स्वरूप है। तीन मात्राएँ हैं—१ जाग्रत्, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति—तीन अवस्थाएँ और १ ब्रह्मा, २ विष्णु, ३ महेश—तीन देव का सङ्घात-स्वरूप है।

'ॐ'-कार में ३।। मात्रा माननेवाले अ, उ, म—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीन मात्राएँ पूर्ण और अर्ध-मात्रा-रूप चैतन्य-ब्रह्म मानते हैं। चार मात्राएँ माननेवाले पराशरादि ऋषि कहते हैं—'अ'-कार प्रथम मात्रा स्थूल विराट्-स्वरूप, 'उ'-कार द्वितीया मात्रा सूक्ष्म हिरण्य-गर्भ-स्वरूप और 'म'-कार तृतीया मात्रा कारण अव्याकृत-रूप, चतुर्थी मात्रा विन्दु-रूप चैतन्य पुरुष है।

वशिष्ठादि ऋषि 'ॐ'-कार में ४।। साढ़े चार मात्राएँ मानते हैं। वे १ स्थूल, २ सूक्ष्म, ३ सुषुप्ति, ४ नाद और चैतन्य की अर्ध-मात्रा—यों साढ़े चार मानते हैं।

कोई पाँच कोषों (१ अन्न-मय, २ प्राण-मय, ३ मनो - मय, ४ विज्ञान - मय, ५ आनन्द - मय) को इसकी मात्रा मान कर पाँच-मात्रिक कहते हैं।

उपनिषदों की रहस्य - पूर्ण कल्पनाओं को छोड़कर यदि शास्त्र - निर्णीत मात्रा के लक्षणानुसार मात्रा का स्वरूप देखें, तो 'ॐ'-कार का स्वरूप-विश्लेषण यों होता है—अ+उ+म्। इन तीन वर्णों में २ स्वर हैं, एक व्यञ्जन है। स्वरों में प्रथम 'अ'-कार ह्रस्व है। इसकी उपर्युक्त (एक - मात्रो ह्रस्वः) के अनुसार एक मात्रा हुई। यह 'अ'-कार एक बार आँख फरकने के काल तक बोलने योग्य है। दूसरा 'उ'-कार भी ह्रस्व है। अतः वह भी एक मात्रावाला ही है। तीसरा 'म'-कार व्यञ्जन होने से आधी मात्रा का रूप रखता है—'व्यञ्जन चार्ध-मात्रकम्'। सब मिलाकर देखें, तो 'ॐ'-कार की २॥ मात्राएँ ही होती हैं।

अब इधर 'माया'-प्रणव 'ह्रीं' का स्वरूप-विश्लेषण भी देखिए—

ह्+र्+ई+म्='ह्रीं' ऐसा है। इसमें प्रथम 'ह्' व्यञ्जन की आधी मात्रा, दूसरे 'र्' व्यञ्जन की भी आधी मात्रा क्योंकि ये स्वर नहीं, व्यञ्जन हैं और व्यञ्जन की आधी मात्रा है। आगे 'ई' - कार दीर्घ स्वर है, इसकी दो मात्राएँ हैं—'द्वि-मात्रो दीर्घः'। फिर 'म्' की आधी मात्रा और है। सब मिलाकर ३॥ साढ़े तीन मात्राएँ होती हैं।

अब यदि जैसे 'अ'-कार को एक मात्रा, 'उ'-कार को एक मात्रा, तथा वर्ण - साम्य के नाते 'म'-कार की भी पूरी एक मात्रा मान कर 'प्रणव' को त्रि-गुण अथवा त्रिमात्रिक कहते हैं, वैसे ही 'माया'-प्रणव (ह्रीं) में भी लागू करें, तो—'ह्+र्+ई+म्'—इसमें वर्ण-साम्य से 'ह्' की १, 'र्' की १, 'ई' की १ और 'म्' की १—सब मिलाकर ५ मात्राएँ होती हैं।

इससे 'ह्रीं'-प्रणव 'तुरीयातीतं ब्रह्म' इस 'श्रुति' का लक्ष्य बन जाता है और वह त्रि-गुणावस्था को पार कर जाता है।

यदि चन्द्र-विन्दु-कलाओं की अर्ध - मात्राओं को बढ़ाकर जोड़ें, तो 'ह्रीं'-प्रणव की मात्रा और अधिक हो जाएगी।

वास्तव में 'ॐ'-कार प्रकृति-दर्शन-प्रधान है और 'ह्रीं'-कार ब्रह्म-चैतन्य-दर्शन-प्रधान। 'ॐ'-कार का प्रकृति-दर्शन-प्रधान होना हमने उपनिषद् के आश्रय पर ही माना है और अनुभव भी ऐसा ही कहता है। देखिए—

'माण्डूक्योपनिषद्' प्रारम्भ में ही कहता है—'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम्।' अन्य 'श्रुतियाँ' भी कहती हैं—'ॐकार एवेदं सर्वम्।' इन श्रुतियों में 'इदं' शब्द से प्रपञ्च की ओर सङ्केत किया गया है। यह अँगुली-निर्देश किया गया है कि जो दिखाई पड़ रहा है, वह सब ॐ-कार ही है। इससे यही समझ में आया कि प्रकृति का प्रपञ्च ॐ-कार ही है।

'माण्डूक्योपनिषद्' की विस्तृत टीका सर्व-मान्य स्वामी श्रीआनन्द गिरि जी ने की है। उनकी टीका मुद्रित भी है। उस टीका में विस्तार-पूर्वक समझाते हुए श्रीआनन्द गिरि लिखते हैं कि 'ॐ-कार का वाच्य प्रकृत्यात्मक प्रपञ्च है। ॐकार प्रकृति का वाचक है।'

अब 'ह्रीं'-कार को समझिए। 'ह्रीं'-कार साढ़े तीन मात्राओं से ५ मात्राओं तक सिद्ध हुआ है। इस कारण यह 'तुरीयातीत' और 'तुरीय'— दोनों ही तत्त्वों को प्रदर्शित करता है।

'ह्रीं'-प्रणव के लिए ऐसी भी कथा सुनने में आती है कि 'साम - वेद' में 'छान्दोग्य उपनिषद्' में भी हिङ्कार का आदेश हुआ है। जैसे 'अग्निर्हिङ्कारो, मनो हिङ्कार, प्रजापतिर्हिङ्कार, प्राणो हिङ्कार' इत्यादि। 'छान्दोग्य उपनिषद्' के द्वितीयाध्याय में देखें। इस 'हिङ्कार' को उद्गीथ माना गया है, त्र्यक्षर बतलाया गया है। 'ह'-कार शिव है - अर्ध-मात्रावान् है, 'ई'-कार शक्ति है - एक - मात्रिका है, 'म'-कार अनुस्वार— अर्ध-मात्रा है। सब मिलकर प्रकृति-पुरुषात्मक या शिव-शक्त्यात्मक होकर अनुस्थान-कला अर्ध-मात्रा चैतन्य-रूपिणी परा-सम्वित् का प्रदर्शन करता है।

'ह्रीं'-कार को सर्व-प्रथम भगवान् विष्णु के लिए मणि-द्वीपाधि-वासिनी भगवती भुवनेश्वरी ने उपदिष्ट किया। भगवती ने भगवान् विष्णु को 'रेफ'-संयुक्त और 'दीर्घ'-स्वर करके दिया। तभी से यह 'ह्रीं'-कार के स्वरूप से प्रवृत्त हुआ है। वैसे तो मूल वैदिक हिङ्कार ही 'ह्रीं' का स्वरूप है। 'अथर्व-श्रुति' में और 'देव्यथर्वोपनिषद्' में स्पष्ट रूप में इसका रूप भगवती भुवनेश्वरी द्वारा परिष्कृत किया हुआ बतलाया गया है। जैसे—

वियदीकार-संयुक्तं, वीति-होत्र-समन्वितम्। अर्धेन्दु-लसितं देव्या, बीजं सर्वार्थ-साधकम्॥
एवमेकाक्षरं मन्त्रं, यतयः शुद्ध-चेतसः। ध्यायन्ति परमानन्द - मया ज्ञानाम्बु - राशयः॥

इसमें 'ह्री'-ङ्कार रेफ-सहित और दीर्घत्व-युक्त उपदिष्ट हुआ है। इसका अर्थ यह है—'हालास्येश्वर-माहात्म्ये माया-बीजार्थ-प्रस्तावे भुवनाधीश्वरी तुर्यातीता विश्व-मोहिनी' और 'सत् - स्वरूपः सदाकारो ह-कारो धर्म - तत्परः। चिदाकारः शिवाकारो रेफः सर्वार्थ - सिद्धिदः। आनन्द - रूपयोरैक्यादीकारः सर्व-कामदः। विन्दु-नादौ तदन्तस्थौ भवेतां मोक्षदावुभौ। सच्चिदानन्द-रूपं तु बीजं प्रोक्तं मनीषिभिः। सच्चिदानन्द-रूपं यत् परंब्रह्म—तदेव ह्रीम्।'

'श्रुति' का अन्य प्रमाण भी देखिए—'य एतां मायां शक्तिं वेद, स मृत्युर्जयति, स पाप्मानं तरति, सोऽमृतत्वं च गच्छति' अर्थात् जो इस माया-शक्ति को जानता है, वही मृत्यु के पार होता है, वही पाप से छूटता है, वही अमृत-प्राप्ति करता है, इत्यादि 'श्रुति'-प्रमाणों से 'ह्री'-ङ्कार की महिमा का दिग् - दर्शन कराया है। हमने यहाँ प्रसङ्ग-वश दोनों प्रणवों ('ॐ' और 'ह्रीं') का स्वरूप और अभिप्राय बताया है। अब आगे की बात सुनिए—

एक युक्ति-सङ्गत प्रमाण और देख लें। 'मन्त्र' या 'शब्द' तथा 'पद'—इनसे जो अर्थ प्रकाशित होता है, वह उनका वाच्य होता है और ये 'मन्त्र, शब्द, पद' उन पदार्थों के वाचक कहलाते हैं। यह जो सम्बन्ध है, वह 'वाच्य—वाचक—सम्बन्ध' कहलाता है। ऊपर हमने दो प्रणव १ 'ॐ'-कार और २ 'ह्रीं'-कार बतलाए हैं। इनका 'वाच्य-वाचक-भाव' भी देख लें।

'तस्य वाचकः प्रणवः' इस सूत्र में स्पष्ट निर्देश नहीं है कि कौन सा 'प्रणव' उस परमात्मा (ब्रह्म) का वाचक है। प्रथम तो ब्रह्म या परमात्मा–कुछ भी कहिए, अनिर्वाच्य है। जब अनिर्वाच्य है, तो उसका वाचक कोई भी पद, मन्त्र या अक्षरादि नहीं हो सकता। यह बात सर्व-मान्य है। यदि इतने पर भी उसे वाच्य मानोगे और उसका कोई भी वाचक मानोगे, तो वाच्य-वाचक-भाव सम्बन्ध करोगे, तब वह अनिर्देश्य, अनिर्वाच्य, अकथनीय आदि नहीं होगा। वाचक शब्द तो वचनीय का ही प्रदर्शन करेगा, अनिर्वचनीय का नहीं करेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। इस कारण यही मानना श्रेष्ठ है कि माया-विशिष्ट ब्रह्म अर्थात् ब्रह्म - संवलिता महा - माया ही किसी का वाच्य हो सकती है। वह अनिर्वाच्य भी वाच्य है,

अनिर्देश्य भी निर्देश्य है। सत् भी है, असत् भी है। इस कारण यदि ॐ-कार किसी का वाचक है, तो प्रकृति का ही वाचक है। यह स्वतः सिद्ध हुआ।

दूसरी युक्ति भी देखिए—ॐ-कार में स्वर विशेष हैं और व्यञ्जन की केवल अर्ध-मात्रा ही है। स्वरों को शक्ति कहा गया है और व्यञ्जन को पुरुष माना गया है। 'शिवः शक्त्या युक्तो०' (सौन्दर्य-लहरी) में समझाया गया है कि 'शक्ति' के बिना 'शिव' कुछ नहीं कर सकता। ॐ-कार में 'अ' और 'उ' दो स्वर हैं, ये शक्ति प्रकृति के रूप हैं। इन पर 'म्' अनुस्वार होकर अर्ध-मात्रा-मय व्यञ्जन है। इस तरह ॐ-कार प्रकृति-प्रधान ही है।

इसके विपरीत 'ह्रीं' बीज में देखिए। 'ह्', 'र्' और 'म्' तीन व्यञ्जन हैं और १ स्वर है—'ई-कार'। तो यह पुं० प्रधान हुआ। यह पर-पुरुष एक शक्ति के द्वारा शिव का प्रकाश करता है और 'ॐ-कार' अर्ध-मात्रिक १ व्यञ्जन से दो स्वर-रूप शक्ति—'प्रकृति' का प्रदर्शन करता है। इस रहस्य को समझने का प्रयत्न कीजिए। हमें यह बात श्री जगदम्बा की कृपा से प्राप्त हुई है।

अब प्रकृत विषय पर आइए। हम कह रहे थे कि नवार्ण मन्त्रादि मन्त्रों के उद्धार - वाक्यों में जैसा निर्देश हो, वैसा ही मन्त्र उपयोग में लाना चाहिए। इस क्रम के अनुसार 'नवार्ण मन्त्र का उद्धार' कहीं है ? देखिए, इसका उद्धार कई स्थानों पर मिलता है। प्रधान रूप से 'अथर्व-श्रुति' देव्यथर्वशीर्ष में देखें—'वाङ्-माया ब्रह्म-सूस्तस्मात्, षष्ठं वक्त्र-समन्वितम्। सूर्यो वामः श्रोत्र-विन्दु-संयुक्ताष्टात् तृतीयकः। नारायणेन संयुक्तो, वायुश्चाधर-संयुतः। विच्चे नवार्णकोऽयं स्यात्, महदानन्द-दायकः।'

अर्थात् श्रुति मन्त्र का यह स्वरूप बताती है—वाङ् बीज (ऐं), माया-बीज (ह्रीं), ब्रह्मसूः ब्रह्मा से उत्पन्न पुत्र कामः, उससे लिया बीज (क्लीं)। यहाँ आदि में 'ॐ-कार' का निर्देश नहीं है। तो फिर इसमें ॐ लगाकर इसे दशार्ण क्यों किया जाए ? जिसे ब्रह्म-विद्या का मन्त्र कहा है, उस ब्रह्म-विद्या के ऊपर प्रकृति-वाचक प्रणव क्या विशेषता कर देगा ? इसका विचार कीजिए।

'मेरु-तन्त्र' में भी 'नवार्ण-मन्त्र' के उद्धार में ॐ-कार का निर्देश नहीं मिलता। जैसे—

वाग्-लज्जा-काम-बीजानि, चामुण्डायै-पदं वदेत्। विच्चे नवार्ण-मन्त्रोऽयं, शक्ति-मन्त्रोत्तमोत्तमः॥

इसी प्रकार 'सप्तशती-सर्वस्व-कार' ने भी यही उद्धार उल्लिखित किया है और पूर्वोक्त 'देव्यथ-र्वशीर्ष' का भी। दोनों ही में 'प्रणव' का नाम नहीं है।

यदि यह कहा जाए कि 'प्रणव' (ॐ-कार) लगाने से हानि तो नहीं है। यदि सभी सामान्य मन्त्रों के ऊपर 'प्रणव' लगा है, तो फिर इस पर भी क्यों न लगाया जाए ? इसके उत्तर में 'मेरु-तन्त्र' देखिए। 'मेरु-तन्त्र' में 'सप्तशती' को छोड़कर अनेक मन्त्रों को (वर्ण-क्रम से निर्दिष्ट किए मन्त्रों को) अनेक देव-ताओं के शाप का जिक्र आया है। 'मेरु-तन्त्र' के दूसरे प्रकाश में बड़े विस्तार से मन्त्रों के शाप बताए हैं। उनमें १९३वें पद्य में यह बात स्पष्ट कही है—'नवार्ण ओंकार - युतश्चामुण्डा - शापतो मनुः। निर्वीज इति संशप्तो, नित्यं नैराश्य-कारकः।'

अर्थात् 'नवार्ण मन्त्र' में ॐ-कार लगाए, तो वह चामुण्डा (महा-माया) के शाप से निर्बीज (परा-क्रम-शून्य) हो जाता है और निराशा ही पैदा करता है। इस प्रकार जब मन्त्र-शास्त्र स्वयं निषिद्ध करता है, तब ॐ-कार लगाने का अनुरोध व्यर्थ ही हुआ।

कुछ लोग 'हर-गौरी तन्त्र' के वाक्य से यह स्वीकार करते हैं कि मन्त्रों का शिर 'प्रणव' है और बिना 'प्रणव' के 'नवार्ण मन्त्र' बिना शिर का हो जाएगा। इस सम्बन्ध में हमारा विचार यह है कि यहाँ 'हर-गौरी तन्त्र' का उद्धरण लागू न होगा क्योंकि 'नवार्ण मन्त्र' के सम्बन्ध में 'प्रणव' न लगाने का विशेष निर्देश हुआ है। इसे विचारिए।

फिर 'प्रणव'-रहित मन्त्र बिना शिर का मन्त्र कहलाता है और पल्लव - रहित मन्त्र नग्न होता है। 'नवार्ण' में कोई पल्लव भी नहीं है, तो क्या हम पल्लव अपनी तरफ से जोड़कर जपने लगें! अब तक किसी ने कहीं भी इसके पीछे कोई 'पल्लव' जोड़ने का साहस नहीं किया है। सर्वत्र मन्त्र-शास्त्रों में यह बिना 'पल्लव' के ही प्रचलित है, तो यह नग्न और शिरो-विहीन दोनों ही दोषों से क्रान्त होता है। इस पर ऐसी बात 'गुरु-परम्परा' से सुनते हैं कि मन्त्रों के अङ्ग की कल्पना जहाँ की है, वहाँ 'ऐं' मुकुट है, 'ह्रीं' (प्रणव) शिर है, 'क्लीं' मुख है, 'चामुण्डायै' धड़ (शरीर) है और 'विच्चे' दोनों पद (चरण) हैं। अतः 'प्रणवं शिरः' वाली बात यहाँ लागू नहीं होती क्योंकि यह विशेषता-पूर्ण निर्देश किया हुआ 'ब्रह्म-विद्या का मन्त्र' है। इसमें 'ह्रीं'-प्रणव ही शिर है।

यही नहीं, जिस प्रकार ॐ - कार और 'ह्रीं' कार प्रणव हैं, वैसे ही 'ऐं' - कार भी प्रणव है। यामल-वचन से सिद्ध होता है कि वीजात्मक मन्त्र आदि में हो, तो वे 'प्रणव' ही माने जाते हैं। 'नवार्ण मन्त्र' में भी तीन वीज 'ऐं, ह्रीं' और 'क्लीं' विशिष्ट हैं। इनके ऊपर ॐ-कार प्रणव की जरूरत नहीं है। सभी मन्त्र तीन कोटि में विभक्त हैं—१ वीजात्मक, २ वाक्यात्मक और ३ मिश्र। मन्त्रों की उपासना में नियुक्ति दो प्रकार की है—१ 'प्रवृत्ति'-प्रधान और २ 'निवृत्ति'-प्रधान। 'प्रवृत्ति'-प्रधान मन्त्रों में (सामान्य निर्देशवालों में) 'प्रणव' (ॐ) लगाकर जप करने से सांसारिक प्रवृत्तियों में सफलता मिल सकती है। अथवा यह भी कह सकते हैं कि सङ्कल्प-सिद्धि के लिए 'प्रवृत्ति'-प्रधान मन्त्र 'प्रणव' की अपेक्षा रखते हैं। इसके विपरीत, 'निवृत्ति'-प्रधान मन्त्रों में, जिनके उद्धार-वाक्यों में ॐ-कार निर्दिष्ट है, वह तो जपनीय है क्योंकि मन्त्र-शास्त्र के प्रवर्तक महर्षियों ने उसको पूर्ण-रीत्या सोच-विचार कर ही लगाया है। किन्तु 'निवृत्ति'-प्रधान अन्य सामान्य मन्त्रों में (प्रणव) ॐ-कार लगा लेना उचित नहीं है।

संक्षेप में, वीजात्मक मन्त्रों के ऊपर, जो ऐं, ह्रीं, क्लीं वाले हों उन पर 'प्रणव' (ॐ-कार) की आवश्यकता नहीं है। 'नवार्ण' जैसे विशिष्ट निर्देशवाले मन्त्रों में ॐ-कार जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। तन्त्रों का ॐ-कार जोड़ने का निर्देश सामान्य मन्त्रों के लिए है, न कि वीजात्मक एवं विशेष निर्देशवाले नवार्णादि मन्त्रों के लिए।

अब यहाँ एक बात और आती है कि जब 'ह्रीं'-वीज की इतनी महिमा है, तो 'नवार्ण मन्त्र' में प्रथम वीज वही क्यों न लगाया गया, 'ऐं' क्यों लगाया गया, तो सुनिए—

नवार्ण मन्त्र चामुण्डा महा-विद्या का मन्त्र है और ब्रह्म-विद्या का परा-मन्त्र है। विद्या-प्राप्ति का वीज-मन्त्र 'ऐं' है, यह सभी जानते हैं। इसकी महिमा बहुत प्रकार शास्त्रकारों ने वर्णन की है। यह वीज जिस मन्त्र के आगे (पूर्व में) होता है, वह मन्त्र सर्वथा सिद्ध होता है। इसके लिए निम्नलिखित कथा भी द्रष्टव्य है—

एक बार स्वायम्भुव मनु ने (जो ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हुए, जिनकी पत्नी शत-रूपा थीं) आदि-युग में, ब्रह्मा जी की आज्ञा से भगवती का आराधन किया। उस अनुष्ठान में उन्होंने वाग्-भव वीज 'ऐं'

का ही निरन्तर जप किया। एक पाद से खड़े रहकर, निराहार रहते हुए, प्राणायाम-परायण होते हुए, यही वाग्-वीज जपते रहे। उनकी इस कठोर तपस्या पर भगवती प्रसन्न हुईं। उनके सम्मुख प्रकट होकर कहने लगीं—'वत्स ! तुम्हें जो चाहिए, वर माँगो।' तब उन्होंने अपनी विश्वोपकारक भावना से यह वर माँगा—हे जगदम्ब ! यदि मुझे वर देने की कृपा करती हो, तो आप यह वर दीजिए कि विश्व में जो कोई वाग्भव वीज (ऐं) से आपकी आराधना करे, आपकी प्रसन्नता के लिए इसका जप करे या किसी भी कामना-युक्त होकर 'जप' करे, तो आप उस पर सत्वर प्रसन्न हों और उसकी समस्त कामनाएँ, चाहे वह 'प्रवृत्ति'-प्रधान हों या 'निवृत्ति'-प्रधान हों, शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त होवें। यह सुनकर भगवती प्रसन्न हुईं और मनु को वाग् - वीज (ऐं) की सिद्धि का वर दिया। यह कथा 'देवी भागवत' के दसवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय में है।

अनुसन्धान की दृष्टि से देखें, तो 'ऐं'-कार का ऐ-कार अ+ई-कार से बना है, उसमें अ-कार—पुरुष-तत्त्व का वाचक है और ई-कार शक्ति-तत्त्व का। अनुस्वार (ँ) तुरीय चैतन्य-रूप है। इसलिए, यह भी 'प्रणव' प्रकृति-पुरुष के विवेचन को प्रकाशित कर तत्त्व-ज्ञान की परा-सीमा का बोध कराता है। मात्रा-विवेक से यह भी ३॥ मात्रा-वाला है। 'प्रणव' (ॐ) कीअपेक्षा विशिष्ट मात्रा-युक्त है। त्रिगुणावस्था से पर-धारणा में ले जानेवाला है। वर्ण-साम्य-नीति को स्वीकार करें, तो ऐं-कार की ४ मात्राएँ होती हैं, जो तुरीय-पद पर पहुँचाती हैं। इन सभी बातों को देखकर ही विद्या-वीज—वाग्-भव वीज (ऐं) को पूर्व में स्थापित किया गया है। इसके पूर्व भी ॐ-कार का प्रयोग उचित नहीं है।

महा-विद्या का महा-वीज होने के कारण इसे महा-काली का वीज मानते हैं। महा-काली, महा-लक्ष्मी, महा-सरस्वती—इस क्रम से यह वीज महा-काली का वीज समझा गया। 'महा-काली' भी आदि-विद्या हैं। महा-विद्याओं में यह आद्या कहलाती हैं। इसलिए इनका वीज विद्या-वीज महा-विद्या 'ऐं' है और इसको 'नवार्ण' की सत्वर सिद्धि के लिए प्रयुक्त किया गया है।

'नवार्ण मन्त्र' वीज और वाक्य दोनों का होने से 'मिश्र' संज्ञा में आता है। वीजात्मक नवार्ण भी चामुण्डा-मन्त्र है, पर वह पूरे देश में प्रचलित नहीं है, केवल दक्षिण के देशों में ही प्रचलित हुआ। यह प्रसङ्ग 'दुर्गोपासना-कल्पद्रुम' में आया है। जहाँ 'नवार्ण मन्त्र' दिया है, वहाँ नागोजी भट्ट ने यह बतलाया है और उसमें प्रणव (ॐ-कार) भी बतलाया है। सम्भव है, इसके देखने से ही सामान्य ज्ञानवालों ने, जो विशेषता का विवेचन न कर सकते थे, इधर भी इसका प्रचार कर दिया हो। पीछे विचार करनेवाले भी गतानुगतिक-न्याय से वैसा ही करने लगे। वह 'नवार्ण मन्त्र' इस प्रकार है—

वेदादिर्वाग्भवं चैव, माया कामं तथैव च। पृथ्वीरेकं वाम-नेत्रं, नाद-बिन्दु-विभूषितम्॥
माया कामं नमः पश्चात् मूल-मन्त्र उदाहृतः।

अर्थात्, वेदादि—ॐ-कार, वाग्-भव—ऐं - कार, माया—ह्रीं - कार, काम—क्लीं - कार, पृथ्वीं एकं नाद - विन्दु - विभूषितं फिर क्लीं - कार, माया—ह्रीं - कार, कामं—क्लीं - कार, पश्चात् पीछे नमः, यों 'नवार्ण' वतलाया है। इसके उद्धार - वाक्य में, वेदादि शब्द से ॐ-कार को निर्दिष्ट किया है। अतएव इसमें उसका लगाना ठीक न्याय - सङ्गत है। इसका शुद्ध रूप ऐसा है—'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं क्लीं ह्रीं क्लीं नमः।'

उक्त मन्त्र में ॐ-कार-सहित सभी अक्षर ६ होते हैं। यह दाक्षिणात्यों में प्रचलित है। अस्तु ! हमें तो हमारे यहाँ प्रचलित कल्याणकारी चामुण्डा-पद वाला ही रुचता है क्योंकि हमने इसके सभी अवयव सार्थ जान लिए हैं। इसके भाव भी मन में ओत-प्रोत हो गए हैं।

अन्त में, निबन्ध का सार यही ज्ञात होता है कि 'नवार्ण मन्त्र' के पूर्व 'ॐ'-कार नहीं लगाना चाहिए। हाँ, बीजों के न्यासादि में 'प्रणव' लगाने का विधान पाया जाता है। अतः न्यास करते समय 'प्रणव'-योजना अनुचित नहीं है। फिर ॐ -कार 'मातृका-चक्र' में त्रयोदश पद पर सिद्ध हुआ है। आचार्यों की आज्ञा है कि 'मातृका-न्यास' करते समय वर्ण के पूर्व ॐ-कार एवं अन्त में नमः लगाकर करना चाहिए।

सबसे अन्त में, एक क्रम का उल्लेख कर अपने लेख को समाप्त करना चाहता हूँ। कोई जिज्ञासु भाव से षट्-कोणार्चा से 'नवार्ण मन्त्र' का साधन करके इस क्रम को अनुभूत करे, तो भगवती स्वयं ही निर्णय दे देंगी —

एक ताम्र-पत्र पर लाल चन्दन से 'षट्-कोण' बनाइए। मध्य में 'ऐं ह्रीं क्लीं' लिखिए, शेष वर्णों को छहों कोणों में लिख लीजिए। मध्य में घृत का 'दीपक' खड़ी बत्ती का रखिए। 'ॐ देवी-दीपाधार-यन्त्राय नमः' से यन्त्र को गन्ध-पुष्प से पूजिए। फिर 'नवार्ण मन्त्र' से और 'नमो देव्यै महा-देव्यै०' इस मन्त्र से दीपक में भगवती का आवाहनादि, प्राण-प्रतिष्ठा कर पूजन कीजिए। पूजन के बाद यन्त्र के सम्मुख ही न्यास-ध्यान-पूर्वक 'नवार्ण मन्त्र' का जप करिए। जप-संख्या नियत कर लीजिए। कम-से-कम दस दिन में या बीस-इक्कीस दिन में १ लाख जप कर लीजिए। एक बार 'प्रणव'-हीन जपिए, दूसरी बार प्रणव-सहित जपिए, फिर जो विशेष अनुभव हो, देखिए।

हमने शास्त्रानुसार, आगमोक्त प्रमाणों के विमर्ष से उक्त बातें जिज्ञासाओं के समाधान के लिए लिखी हैं। हम किसी पक्ष पर आसक्त होकर नहीं लिख गए हैं।

ॐ-कार की महिमा अनेक प्रकार प्रथित है, उसमें किसी शङ्का का प्रश्न नहीं। वर्ण मातृका के क्रमानुसार अ-कार से ॐ-कार की उत्पत्ति हुई है और ह-कार से ह्रीं-कार की। ये दोनों वर्ण आदि और अन्त के हैं। आदि प्रवृत्ति के लिए होती है, अन्त निवृत्ति के लिए होता है। इत्यादि और भी कई विचार-धाराएँ इसमें समाविष्ट हैं, पर लेख-विस्तार से हम यहाँ न देते हुए इतना लिखने को ही पर्याप्त समझ कर 'चण्डी' के पाठकों से क्षमा चाहकर विरत होते हैं और यही कहते हैं कि इस लेख से जिज्ञासुओं का समाधान हो। आशा है, ध्यान-पूर्वक इसे पढ़ने से पाठकों को कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य होगा। जय माँ की।